दैनिक जागरण

सफलता एक पड़ाव नहीं बल्कि अनवरत चलने वाली यात्रा है

लोकपाल की प्रतीक्षा

लोकपाल व्यवस्था के निर्माण में देरी को देखते हुए सुप्रीम कोर्ट ने भले ही संबंधित सर्च कमेटी को अपना काम पूरा करने यानी नामों का पैनल फरवरी के अंत तक तैयार करने का निर्देश दिया हो, लेकिन लगता नहीं कि हाल-फिलहाल लोकपाल का गठन होने वाला है। इससे संबंधित मामले की अगली सुनवाई अब मार्च में होगी। तब तक आम चुनावों की घोषणा हो सकती है। ऐसे में लगता नहीं कि नई सरकार के गठन के पहले देश को लोकपाल मिल पाएगा। यह एक विडंबना ही है कि जिस लोकपाल के लिए इतना बड़ा आंदोलन हुआ उसके प्रति अब कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई जा रही है। लोकपाल संबंधी कानून बने हुए चार वर्ष से अधिक बीत चुके हैं, लेकिन अभी तक उसके गठन संबंधी कुछ बुनियादी काम ही नहीं हो सके हैं। इस सबसे यही अधिक लगता है कि भ्रष्टाचार से लड़ने वाली इस व्यवस्था के निर्माण की जरूरत ही नहीं महसूस की जा रही है। यह समझ आता है कि केंद्र सरकार लोकपाल के गठन को लेकर बहुत उत्साहित नहीं, लेकिन केवल उसे ही दोष नहीं दिया जा सकता। लोकपाल के लिए नामों का पैनल तैयार करने का काम जिस सर्च कमेटी को सौंपा गया था वह भी सुस्त दिख रही है। इस कमेटी का गठन पिछले साल सितंबर में हो गया था, लेकिन अभी तक उसकी केवल एक बैठक ही हो सकी है। सुप्रीम कोर्ट के निर्देश के बाद यदि यह कमेटी लोकपाल का हिस्सा बन सकने वाले नामों को पैनल तैयार भी कर लेती है तो फिर ये नाम चयन समिति के पास जाएंगे। यह चयन समिति जब तक अपना काम करेगी तब तक शायद देश में चुनाव हो रहे हों। क्या यह उचित होगा कि लोकपाल और उसके सहयोगियों के नाम तय करने का काम चुनाव के मुहाने पर खड़ी सरकार में शामिल लोग करें? इस सवाल का जवाब जो भी हो, यह किसी से छिपा नहीं कि लोकपाल संबंधी चयन समिति की बैठकें इसलिए भी बाधित हुईं, क्योंकि लोकसभा में सबसे बड़े दल के नेता के तौर पर कांग्रेस के सांसद मल्लिकार्जुन खड़गे उसका हिस्सा बनने के लिए तैयार नहीं हुए।

समस्या केवल यह नहीं है कि लोकपाल के गठन का काम प्राथमिकता में नहीं दिख रहा है, बल्कि यह भी है कि राज्य सरकारें लोकपाल की तर्ज पर लोकायुक्त के गठन में भी दिलचस्पी नहीं दिखा रही हैं। एक समस्या यह भी है कि कुछ लोग अपने मन मुताबिक लोकपाल व्यवस्था का निर्माण होते देखना चाहते हैं। यह अच्छा हुआ कि सुप्रीम कोर्ट ने ऐसे लोगों को झिड़का। पता नहीं लोकपाल का गठन कब होगा, लेकिन यह ठीक नहीं कि राज्य सरकारें लोकायुक्त को लेकर ढिलाई बरतें। वे इससे अनजान नहीं हो सकतीं कि आम आदमी रोजमर्रा के भ्रष्टाचार से अभी भी त्रस्त है। माना कि केंद्र सरकार उच्च स्तर के भ्रष्टाचार पर लगाम लगाने में एक बड़ी हद तक कामयाब रही है, लेकिन राज्यों के स्तर पर नौकरशाही के भ्रष्टाचार में कोई उल्लेखनीय लगाम लगती नहीं दिखी है। ध्यान रहे कि आम आदमी को सबसे ज्यादा परेशानी राज्यों की नौकरशाही के भ्रष्ट तौर-तरीकों से ही उठानी पड़ती है।

कचरा प्रबंधन की चुनौती

मसूरी-देहरादून विकास प्राधिकरण ने भवनों के नक्शे पास करने में कूड़ा निस्तारण की व्यवस्था की शर्त लागू की है तो इसके पीछे उत्तराखंड के शहरी क्षेत्रों में विकराल होती कचरा प्रबंधन की समस्या ही छिपी है। हालांकि सॉलिड वेस्ट मैनेजमेंट एक्शन प्लान 2017 के तहत राज्य के सभी 101 नगर निकायों में कदम उठाए जा रहे हैं। सभी निकायों के कुल 936 वार्डों में से 873 में डोर-टू-डोर कूड़ा एकत्रीकरण चल रहा है। 15 शहरों में जैविक कचरे से कंपोस्ट बनाने का कार्य शुरू हो चुका है। केंद्र और राज्य सरकारों की ओर से इस मुहिम में 35 फीसद अनुदान भी निकायों को मुहैया कराया जा रहा है। बावजूद इसके शहरी क्षेत्रों में कचरा प्रबंधन की समस्या आज विकराल रूप धारण कर चुकी है, जिसने हर किसी की पेशानी पर बल डाले हुए हैं। शहरों में जिस अनुपात में दिन-प्रतिदिन कूड़ा-कचरा बढ़ रहा है, उस गति से इसके निस्तारण की सुविधाएं नहीं बढ़ पा रही हैं। आंकड़ों पर गौर करें तो पिछले वर्ष हुए निकायों के सीमा विस्तार के बाद राज्य के कुल शहरी क्षेत्रफल में लगभग 60 फीसद और शहरी आबादी में करीब सात फीसद की बढ़ोतरी हुई है। 2011 की जनगणना के मानकों की कसौटी पर देखें तो शहरी क्षेत्रों की आबादी 30.6 फीसद से बढ़कर 38 फीसद तक जा पहुंची है। जाहिर है कि इस सबके चलते रोजाना निकलने वाले कूड़ा-कचरे का अनुपात भी बढ़ा है। परिणामस्वरूप मैदान से लेकर पर्वतीय क्षेत्र के शहरों में इसके निस्तारण की समस्या भी बढ़ी है। शायद ही कोई शहर ऐसा होगा, जो इस समस्या से दो-चार न हो रहा हो। पर्वतीय क्षेत्र के तमाम शहरों में तो स्थिति ये है कि कूड़ा निस्तारण के मद्देनजर एक अदद ट्रेंचिग ग्राउंट तक नहीं है। हालांकि सरकार ने शहरों की इस समस्या के मद्देनजर कूड़ा-कचरा को भी एक संसाधन मानते हुए इससे खाद, बिजली उत्पादन पर जोर दिया है, लेकिन इस मुहिम में तेजी लाने की दरकार है। यही नहीं, कूड़ा-कचरा प्रबंधन के लिए सिर्फ सरकार के भरोसे रहने से काम नहीं चलेगा। शहर के प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जिम्मेदारी समझते हुए अपने शहर को साफ-सुथरा बनाने के लिए सॉलिड वेस्ट मैनेजमेंट में भागीदारी करनी होगी।

न्यायाधीशों की नियुक्ति का गंभीर सवाल

प्रो. मक्खनलाल

न्यायाधीशों की नियुक्ति को लेकर उठते सवाल न तो न्याय व्यवस्था के हित में हैं और न ही न्यायधीशों की प्रतिष्ठा के हित में

हाल में सुप्रीम कोर्ट में दो जजों की नियुक्ति के बाद कोलेजियम व्यवस्था फिर सवालों से दो-चार है। इस व्यवस्था पर विचार करने से पहले यह जानना जरूरी है कि आपातकाल के दौरान इंदिरा गांधी ने ऐसा क्या किया कि मौका मिलने पर न्यायाधीशों ने अदालती निर्णयों के माध्यम से सरकार से काफी कुछ न केवल छीन लिया, बल्कि जजों की नियुक्ति के मामले में शासन-प्रशासन के हाथ भी बांध दिए। आपातकाल के दौरान इंदिरा गांधी ने उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को प्रताड़ित, अपमानित एवं भयभीत करने के लिए स्थानांतरण प्रक्रिया अपनाई। हालांकि पहले भी उनके स्थानांतरण हुए थे, लेकिन वे सब जजों के निवेदन और उनकी सहमति से हुए थे। आपातकाल में जबरन स्थानांतरण किए गए और अधिकतर उन जजों के जिन्होंने आपातकाल या उससे पहले सरकार की मर्जी के खिलाफ फैसले दिए थे। पहली किस्त में जिन 16 जजों के स्थानांतरण किए गए उनमें बंगलौर उच्च न्यायालय के न्यायधीश चंद्रशेखर एवं सदानंद स्वामी थे जिन्होंने लालकृष्ण आडवाणी, मधु दंडवते आदि की याचिकाएं सुनी थीं। इसी तरह मप्र के एपी सेन थे, जिन्होंने बंदी प्रत्यक्षीकरण की याचिका सुनी थी। मनमाने स्थानांतरण को लेकर जजों की असहमति पर उन्हें परोक्ष रूप से अपमानित किया गया। इस पर कभी इंदिरा सरकार में शिक्षा और विदेश मंत्री रहे जस्टिस छागला ने कहा था कि हमारी न्यायिक परंपरा एवं इतिहास का यह सबसे निकृष्ट काल है। सरकार इतना सब इसलिए कर सकी, क्योंकि तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश जस्टिस अजित नाथ रे बेहद कमजोर एवं भीरू व्यक्ति थे। वह हर बात के लिए श्रीमती गांधी या उनके सहयोगियों के मार्गदर्शन का इंतजार करते थे।

बदले की भावना से भरी इंदिरा गांधी ने उच्च न्यायालयों के कई अतिरिक्त न्यायाधीशों को उच्चतम न्यायालय की संस्तुति के बाद भी स्थाई करने से इन्कार कर उन्हें बर्खास्त कर दिया। ये वे न्यायाधीश थे जिन्होंने आपातकाल के दौरान सरकार के खिलाफ निर्णय दिए थे। इनमें से एक दिल्ली उच्च न्यायालय के जस्टिस आरएन अग्रवाल भी थे जिन्होंने कुलदीप नैयर की गिरफ्तारी को अवैध करार दिया था। सरकार यहीं नहीं रुकी। तत्कालीन विधि एवं न्याय मंत्री एचआर गोखले और अन्य कांग्रेसी नेता जैसे कि कुमारमंगलम, चंद्रजीत यादव, केपी उन्नीकृष्णन आदि तो प्रतिबद्ध न्यायिक व्यवस्था एवं प्रतिबद्ध न्यायाधीशों की बात करने लगे। लोकसभा में कुमारमंगलम ने कहा, हम ऐसे न्यायाधीशों को आगे बढ़ाना चाहेंगे जो हमारे दर्शन एवं विचारधारा से सहमत हों, न कि असहमत। एक मंत्री ने तो पूरी न्यायिक व्यवस्था को विपक्षी दल बता दिया। विधि एवं न्याय मंत्री गोखले ने न्यायाधीशों के नाम खुले पत्र में लिखा कि सरकार उन सभी न्यायधीशों से सहानुभुति रखती है जो सिद्धांततः सरकार के खिलाफ निर्णय नहीं देते। ऐसे सभी जजों को हम उच्चतम न्यायलय तक ले जाने का विचार रखते हैं।

इंदिरा गांधी ने न्यायपालिका के साथ खिलवाड़ करने के साथ संविधान में जो मनमाने संशोधन किए उससे ईमानदार और निष्पक्ष न्यायाधीशों का चिंतित होना स्वाभाविक था। जजों की नियुक्ति में सरकार की मनमानी को लेकर उच्चतम न्यायालय पहले से ही क्षुब्ध था। उसने कुछ करने का मन बना लिया। तब तक संविधान की धारा 124 (2) और 217 के तहत राष्ट्रपति स्वहस्ताक्षर से उच्च एवं उच्चतम न्यायलय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करते थे। वह सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश एवं संबंधित उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों से विचार-विमर्श भी करते थे, लेकिन कोलेजियम व्यवस्था बनाकर यह सब किनारे कर दिया गया। सुप्रीम कोर्ट अधिवक्ता संघ बनाम भारत सरकार मामले में दिया गया फैसला कोलेजियम का आधार बना। सुप्रीम कोर्ट ने न्यायाधीशों की नियुक्ति संबंधी सभी अधिकार राष्ट्रपति से छीनकर अपने हाथ में ले लिए। यह व्यवस्था 1993 से ही लागू हो गई और सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश अपने वरिष्ठ सहयोगियों से विचार-विमर्श कर नियुक्त किए जाने वाले जजों के नाम सीधे राष्ट्रपति को भेजने लगे। सुप्रीम कोर्ट ने यह व्यवस्था भी दी कि राष्ट्रपति को संस्तुत किए गए नामों का अनुमोदन हर हाल में करना होगा। धीरे-धीरे इस व्यवस्था के विरोध में अंदर से ही यानी की सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीशों द्वारा ही आवाज उठाई जाने लगी। यह तो कहा ही गया कि इसके कहीं कोई मानदंड नहीं कि जजों को कैसे चुना जाए और संबंधित बैठकों का विवरण नहीं तैयार किया जाता। इसके अलावा जजों की नियुक्ति में भाई-भतीजावाद का बोलबाला होने और हद से ज्यादा गोपनीयता बरतने की बात भी कही गई। यह सब कहने वालों में जज भी शामिल थे। सेवानिवृत्त जस्टिस रूमा पाल ने कहा था कि पूरी प्रक्रिया न केवल बेहद गोपनीय है, बल्कि एक तरह की बंदरबांट है। जस्टिस चेलमेश्वर तो पूरी प्रक्रिया से इतने क्षुब्ध थे कि उन्होंने कई बार कोलेजियम की मीटिंग में शामिल होने से ही इन्कार कर दिया।

अवधेश राजपूत

कोलेजियम व्यवस्था में जजों की वरिष्ठता का कैसे उल्लंघन होता है, इसकी बानगी है कि अल्तमस कबीर 13वें, अमिताव राय 35वें, वीएन कृष्णा 33वें और एसएच वरियावा 38वें नंबर पर होने के बाद भी सुप्रीम कोर्ट के जज नियुक्त हुए। 1993 में कोलेजियम व्यवस्था लागू होने के बाद कुछ जजों को सुप्रीम कोर्ट पहुंचने में 14-15 वर्ष लगे, लेकिन कुछ जज नौ वर्ष हाईकोर्ट में बिताने के बाद ही सुप्रीम कोर्ट पहुंच गए। वीआर कृष्णअय्यर तो हाईकोर्ट में तीन साल के बाद ही सुप्रीम कोर्ट पहुंचे। अभी हाल में सुप्रीम कोर्ट के जज बने केएम जोसेफ वरिष्ठता सूची में 42वें स्थान पर थे। सुप्रीम कोर्ट के कम से कम छह पूर्व जजों के बेटे भी सुप्रीम कोर्ट पहुंचे। ये हैं पीएन भगवती, एसएम फजल अली, बीपी सिंह, एन संतोष हेगड़े, बीएन अग्रवाल और डीवाई चंद्रचूड़। तमाम पूर्व न्यायाधीशों के पुत्र और पौत्र भी हाईकोर्ट के जज बने। सुप्रीम कोर्ट और हाई कोर्ट में ऐसे भी बहुत से जज हैं जिनके पिता, भाई, रिश्तेदार या दोस्त राजनीति, बार या प्रशासन में काफी रसूख वाले थे। यह अच्छी स्थिति नहीं है। न न्याय व्यवस्था के लिए और न ही न्यायालयों और न्यायधीशों की प्रतिष्ठा के लिए।

राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग से जो आशा बंधी थी कि न्यायाधीशों की नियुक्ति में न केवल पारदर्शिता आएगी, वरन उनका मान सम्मान भी बढ़ेगा, वह ध्वस्त हो चुकी है। सुप्रीम कोर्ट के पांच जजों की पीठ चार-एक के बहुमत से इस आयोग और संबंधित संविधान संशोधन को असंवैधानिक घोषित कर चुकी है। इस आयोग को अंसवैधानिक बताने वाले फैसले में जजों ने यह भी कहा था कि कोलेजियम व्यस्था में सब कुछ ठीक नहीं है। जजों की नियुक्ति में पारदर्शिता लाने के लिए सुप्रीम कोर्ट ने खुद ही कहा था कि वह एक नीति निर्धारित करेगा। तबसे ढाई वर्ष बीत चुके हैं, लेकिन वह नीति नदारद है। एक तरह से अब हम फिर से चौराहे पर आ खड़े हैं। अपेक्षा की जाती है कि सुप्रीम कोर्ट खुद ही पहल कर इस स्थिति को जल्द ही खत्म करे ताकि न्यायालयों एवं न्यायधीशों की प्रतिष्ठा को लेकर कोई सवाल न उठें।

(लेखक इंस्टीट्यूट ऑफ हेरिटेज रिसर्च एंड मैनेजमेंट, दिल्ली के संस्थापक निदेशक रहे हैं)

response@jagran.com

एक अव्यावहारिक निर्णय का अंत

जगमोहन सिंह राजपूत

फेल न करने की नीति का खामियाजा उस वर्ग के बच्चों को भुगतना पड़ा जिनके लिए शिक्षा ही आगे बढ़ने का जरिया है

शिक्षा का अधिकार अधिनियम (आरटीई एक्ट) पुनः चर्चा में है, क्योंकि बीते दिनों आठवीं तक छात्रों को फेल न करने की नीति (नो डिटेंशन पॉलिसी) संबंधी इसके प्रावधान को समाप्त कर दिया गया। 2010 से यह देश भर के निजी और सरकारी, दोनों तरह के स्कूलों में लागू थी। उस समय जब यह कहा गया कि अब कक्षा आठ तक कोई परीक्षा नहीं होगी और सभी बच्चे प्रतिवर्ष अगली कक्षा में आगे चलते जाएंगे तब भारत में शिक्षा व्यवस्था की जमीनी स्थिति से परिचित सभी लोगों को यह स्पष्ट हो गया था कि यह अव्यावहारिक निर्णय है। देश में इसे लागू करने लायक परिस्थितियां नहीं हैं। इससे सबसे अधिक हानि समाज के उस वर्ग के बच्चों को ही होगी जिसके लिए शिक्षा प्राप्त करना ही जीवन में आगे बढ़ पाने का एकमात्र तरीका है। पिछले सात-आठ वर्षों के अनुभव के आधार पर इसकी पुष्टि हो गई। नो डिटेंशन पॉलिसी लागू होने से अध्यापकों का रहा-बचा उत्तरदायित्व बोध और भी शिथिल हो गया। बच्चे अगली कक्षा में तो जाते रहे, लेकिन सीख कुछ नहीं पाए। परिणामस्वरूप कक्षा आठ-नौ में असफल होकर उनमें से अधिकांश ने स्कूल छोड़ दिया। माता-पिता ठगे से रह गए। इसके बाद इस नीति में परिवर्तन के लिए हर तरफ से विरोध के स्वर उठने लगे। लिहाजा अनेक राज्यों ने परीक्षा न लेने की नीति पर पुनर्विचार के लिए केंद्र सरकार से इस अधिनियम में संशोधन के लिए अनुरोध किया। तीन जनवरी, 2019 को राज्यसभा ने भी प्रस्तावित परिवर्तनों को मंजूरी दे दी।

यह राज्य सरकारों के ऊपर छोड़ा गया है कि वे चाहें तो कक्षा पांच और आठ के बाद परीक्षा ले सकती हैं, लेकिन आरटीई एक्ट में परीक्षा न कराने का बंधन हट गया है। अब यदि कोई बच्चा परीक्षा में असफल होता है तो उसके लिए अलग से पढ़ाने के विशेष प्रबंध कर अगला सत्र प्रारंभ होने के पहले उसकी पुनः परीक्षा ली जाएगी। उसे एक अवसर और भी दिया जा सकता है। मेरे विचार से यदि विद्यार्थी इसके बाद भी अपेक्षित स्तर तक नहीं पहुंच पाता तो उसे अगली कक्षा में भेजना अन्याय होगा, क्योंकि वह आगे नहीं बढ़ पाएगा और फिर उसके सामने स्कूल छोड़ने के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं बचेगा। यह शिक्षा सुधारों का दुर्भाग्य है कि इससे जुड़े महत्वपूर्ण पक्षों पर भी दलगत राजनीति को आगे रखकर तर्क दिए जाते हैं। आरटीई एक्ट में परिवर्तन को भी सियासी नजरों से देखा जाने लगा है। अब राज्य सरकारें भी संभवतः उसी आधार पर परीक्षा लेने या न लेने का निर्णय करेंगी। जहां परीक्षा होगी और जहां नहीं होगी-इस अंतर का बच्चों की शैक्षिक उपलब्धियों से किस प्रकार का संबंध है, इसका सर्वेक्षण और अध्ययन तीन-चार वर्षों के बाद किया जाना चाहिए और आगे का निर्णय उसी आधार पर लेना उचित होगा।

यहां यह समझाना आवश्यक है कि जिस ढंग से हमारे देश में बच्चों की परीक्षा ली जाती है उसे आदर्श विधा तो कतई नहीं कहा जा सकता है। प्रारंभिक कक्षाओं में बच्चे की शैक्षिक उपलब्धिओं का सबसे सही आकलन तो उसे पढ़ाने वाला अध्यापक ही कर सकता है। शिक्षा की दृष्टि से अग्रणी देशों में ऐसा ही होता है, लेकिन यह तभी संभव है जब अध्यापक सही ढंग से प्रशिक्षित हो, उसे अपने कार्य में रुचि हो, उसके साथ उतने ही बच्चे हों जिन पर वह व्यक्तिगत रूप से ध्यान और समय दे सके। उस पर कोई अनावश्यक बोझ न हो, जैसा कि लाखों अस्थाई अध्यापकों पर इस समय इस देश भर में है। अच्छे से अच्छा अध्यापक भी मूल्यांकन का यह कार्य सुचारू रूप से नहीं कर पाएगा यदि उसे बार-बार चुनावों या पशु-गणना जैसे गैर-शैक्षिक कार्यों में उसकी अनिच्छा को दरकिनार कर लगा दिया जाए। सरकारी प्रशासनिक अधिकारी अध्यापकों के साथ कैसा व्यवहार करते हैं, यह किसी से छिपा नहीं है। शिक्षा के क्षेत्र में जितने भी देश आगे माने जाते हैं उनमें से हर एक में अध्यापक का सम्मान सर्वाधिक है। उसका वेतन उसे आर्थिक स्वतंत्रता देता है। परिवार, समाज और सरकार में उसे सम्मानजनक स्थान मिला होता है। उसे ट्यूशन या कोचिंग संस्थानों में जाकर अतिरिक्त धन कमाने की आवश्यकता नहीं होती है। जो स्थितियां देश में हैं, उन्हें जमीनी स्तर पर बिना जाने समझे या उनमें सुधार के प्रयास किए बगैर जब मंत्री और प्रशासनिक अधिकारी फिनलैंड जैसे देशों का दौरा करते हैं तब सारी स्थिति की विडंबना समझ में आ जाती है। फिनलैंड जाकर वहां की व्यवस्था देखकर आप क्या उसमें से अंशमात्र भी लागू कर पाएंगे? हमारी शिक्षा की मूलभूत कमियों को दूर करने की आवश्यकता की ओर तो 1950 के बाद से लगातार हर स्तर पर ध्यान दिलाया जाता रहा है, लेकिन उन्हें दूर करा पाने में केवल आंशिक सफलता ही मिल सकी है।

सरकारी स्कूलों की साख इस समय सबसे निचले स्तर पर पहुंच चुकी है। सत्तर साल के बाद अपनी शिक्षा व्यवस्था के लिए अब विदेशी शासकों को जिम्मेदार ठहराना अपनी हंसी उड़ाना ही होगा। कोठारी आयोग (1964-66) ने परीक्षा पद्धति में आमूल-चूल परिवर्तन की आवश्यकता पर बल दिया था, जबकि आज भी लगभग वैसी ही परीक्षा पद्धति कक्षा दस तथा बारह की बोर्ड परीक्षाओं में बनी हुई है। बच्चों की नैसर्गिक प्रतिभा के विकास या उनकी जिज्ञासा तथा सृजनात्मकता को पंख लगाने के बजाय यह पद्धति उसे ही कुंद कर देती है, क्योंकि बच्चे और अध्यापक पाठ्यक्रम पूरा करने तथा बोर्ड परीक्षा में अधिकाधिक अंक लाने मात्र को ही शिक्षा का संपूर्ण लक्ष्य मानने को बाध्य हैं। प्राथमिक (कक्षा पांच तक) और प्रारंभिक शिक्षा (कक्षा आठ तक) की गुणवत्ता आगे की शिक्षा को प्रभावित करती है। हाल के एक सर्वेक्षण से यह इंगित हुआ कि प्राथमिक पाठशालाओं में बच्चों में सीखने का स्तर नीचे ही जा रहा है। सभी उन कारणों और तथ्यों से परिचित हैं जो नकल माफिया को विस्तार देते हैं, कोचिंग संस्थाओं को बढ़ावा देते हैं और प्रतियोगिता परीक्षाओं में व्यापमं जैसे घोटाले कराते हैं। कक्षा पांच और आठ में परीक्षा हो या नहीं हो, इस पर बहस हो सकती है, मगर हमें उन बड़े अवरोधों को भूलना नहीं चाहिए जिनके कारण करोड़ों बच्चे अपेक्षित स्तर की शिक्षा स्कूलों में न पाकर आगे के जीवन में निराशा ही पाते हैं। युवा भारत की चर्चा बहुधा होती है, युवाओं के लिए देश-विदेश में स्वर्णिम अवसर उपलब्ध होने की बात भी कही जाती है, मगर प्रारंभिक शिक्षा को उचित स्वरूप देने के लिए किए गए प्रयत्न अभी भी कमजोर बने हुए हैं। यहां पर संपूर्णता में सुधार आवश्यक हैं।

(लेखक एनसीईआरटी के पूर्व निदेशक हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

अभिव्यक्ति

मन में चल रहे भावों को अभिव्यक्त करना आवश्यक होता है। ऐसा न करना समाज को किसी बहुमूल्य संभावना से वंचित रखने जैसा है। समाज कब किसी नए परिवर्तन के लिए तैयार हो जाए इसका अनुमान लगाना कठिन होता है। धरती में एक नन्हा सा बीज बोना एक सामान्य घटना है। उसका अंकुरित होकर एक विशाल वृक्ष बन जाना इतिहास कहलाता है। मन के विचार भी भविष्य फल प्राप्त करने के बीज ही होते हैं। उन्हें बाहर आने देना चाहिए। बहुधा ऐसा नहीं किया जाता। अपने काम से काम रखने की सोच समाज के साथ तो अन्याय है ही अपने उत्तरदायित्व से पलायन भी है। समाज सभी का आंगन है। इसकी देखभाल सभी को करनी है।

सक्षमता व्यक्ति या व्यक्तियों की नहीं विचार की होती है। काशी में कबीर अकेले थे। उनके विचारों में शक्ति थी, इसलिए कोई उनके आगे टिक नहीं सका। गुरु नानक जी अपने विचारों के कारण ही महापुरुष बने जिनकी आज सारा संसार पूजा करता है। विचारों की अभिव्यक्ति के भिन्न-भिन्न माध्यम हैं। संसार ने उन्हीं विचारों को ग्रहण किया है जो स्पष्ट थे, सर्व कल्याण के थे और किसी भी दुर्भावना से मुक्त थे। वे शाश्वत थे और सर्वग्राही थे। संसार में बहुत कुछ लिखा, बोला और किया जा रहा है, किंतु वह शाश्वत और सर्वग्राही न होने के कारण समाज का अंग नहीं बन पा रहा है। बहुत से आंदोलन उभार पर आते हैं, किंतु कब अदृश्य हो गए पता ही नहीं चलता है। इससे समाज में निराशा व्याप्त हो रही है। धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक वैमनस्य बढ़ रहे हैं।

धरती में बोए जाने वाले बीज की गुणवत्ता आवश्यक है। बीज बोने योग्य नहीं होगा तो लाख कोशिशें हों, वह अंकुरित होकर वृक्ष नहीं बन सकेगा। जब समाज के लिए ठीक वैसा ही सोचा जाए, जैसा स्वयं के लिए सोचा जाता है, तभी वैचारिक शुद्धता को सुनिश्चित किया जा सकता है। जो इस भेद को मिटा कर आगे बढ़े और स्वयं और समाज के साथ ही ईश्वर की दृष्टि को भी एकरूप किया, वे ही समाज को दिशा दे सकने में सफल हुए। परमात्मा जैसे संसार के बारे में सोचता है, वैसे सोचें। वह सभी को वायु, जल, अग्नि और प्रकाश दे रहा है। वैसी समदृष्टि में ही समाज का हित है।

डॉ. सत्येंद्र पाल सिंह

सस्ता-महंगा का चक्कर

फिर से

कई बार लोग सेल में चीजें खरीदते हैं और सस्ती के चक्कर में ना जाने कितनी बेकार की चीजें खरीद लाते हैं

मुझे जब कुछ खरीदना होता है तब मैं अपनी आवश्यकता देखती हूं, भाव नहीं। मुझे लगता है कि भाव देखकर कुछ खरीदा ही नहीं जा सकता है। एक दिन ज्वैलर की दुकान से सामान खरीदते हुए ऐसे ही सोने के भाव पर बात आ गई। सोने के भाव रोज ही घटते-बढ़ते रहते हैं। सेल्स-गर्ल ने एक मजेदार बात बताई कि जब सोना सस्ता होता है तब हमारे यहां ग्राहकी कम होती है, लेकिन जब सोना महंगा होता है तब ग्राहकी बढ़ जाती है। कारण है कि लोग सोचते हैं कि आज सस्ता हुआ है तो अभी और सस्ता होगा, इसलिए रुक जाओ, लेकिन जब महंगा होने लगता है तब चिंता हो जाती है कि खरीद लो नहीं तो और महंगा हो जाएगा। एक हम जैसे लोग हैं कि ना सस्ता देखते हैं और ना ही महंगा देखते हैं बस अपनी जरूरत देखते हैं। जब जरूरत लगे तब खरीद लो, दुनिया के भाव तो चढ़ते-उतरते ही रहते हैं।

कई बार लोग सेल में चीजें खरीदते हैं और सस्ती के चक्कर में ना जाने कितनी बेकार की चीजें खरीद लाते हैं। मेरा मन तो हमेशा यही कहता है कि जब जरूरत हो और जितनी जरूरत हो उतना ही खरीदो, ना भाव की चिंता करो और ना समय की। भाव की चिंता करने पर हम कभी भी अपने मन को खुश नहीं रख पाते।

दुनिया पाई-पाई का हिसाब रखने से चलती है और मैं मन की मौज का हिसाब रखना चाहती हूं। जो लोग भी पाई-पाई का हिसाब रखते हैं वे अक्सर महंगा ही खरीदते हैं, जैसे मुझे सेल्स-गर्ल ने बताया कि हमारे यहां हर आदमी महंगे के डर से महंगे भाव में ही खरीदता है।

एक पुरानी बात याद आ गई, जब बच्चे पढ़ ही रहे थे तब एक विवाह समारोह में जाने के लिए बिटिया को हवाई जहाज से जाना आवश्यक था, क्योंकि उसकी परीक्षा थी। अब या तो परीक्षा ही दो या फिर विवाह में ही जाओ, लेकिन हवाई यात्रा से दोनों संभव हो रहा था। मैंने पतिदेव को समझाया कि अभी समय की मांग है कि हवाई जहाज का टिकट लिया जाए, क्योंकि यह समय लौटकर नहीं आएगा। आज इसे हम टिकट दिला रहे हैं और कल इसे हमारी जरूरत नहीं होगी, लेकिन यदि हमने आज नहीं दिलाई तो इसके मन की कसक हम ताजिंदगी नहीं मिटा सकेंगे। इसलिए पैसे को मत देखो, केवल जरूरत और मन को देखो, लेकिन इस देश में अधिकांश लोग मन को मारे बैठे हैं, केवल पैसा ही उनकी प्रमुखता में है।

प्याज के भाव बढ़ गए, पेट्रोल के भाव बढ़ गए तो उनका सबकुछ लुट गया। महीने में शायद 100-200 रुपये का अंतर आया होगा, लेकिन हमने ऐसा शोर मचाया कि ना जाने क्या हो गया! पैसा-पैसा कर-करके हमने खुद को पैसे का दास बना लिया। चारों तरफ एक ही बात कि पैसा कैसे बटोरा जाए। लोगों ने लाखों-करोड़ों बटोरने शुरू कर दिए और सस्ते-महंगे के चक्कर में खर्च भी नहीं कर पाए। ज्वैलर से लेकर आलू-प्याज तक वाले व्यापारी हमारे मन को जान चुके हैं, राजनीतिक दल जान चुके हैं कि हम केवल पैसे से ही संचालित होते हैं। यही हमारी नियति बनकर रह गई है। कभी पैसे से इतर मन के भाव को देखना सीख लो, दुनिया अपनी सी लगेगी।

(अजित गुप्ता का कोना ब्लॉग से साभार)

मेलबाक्स

जनता ही तय करेगी देश का भविष्य

राजनाथ सिंह सूर्य ने अपने आलेख 'उत्तर प्रदेश की चुनावी तस्वीर' में दो पार्टी प्रमुखों के बीच होने वाले चुनावी गठजोड़ को भले ही भाजपा के लिए चुनौती माना है, लेकिन बिना किसी चुनावी एजेंडे के केवल सीटों के बंटवारे मात्र से इस चुनावी गठबंधन की उभरती तस्वीर अभी धुंधली है। माना कि इन दोनों पार्टियों का अपना जातिगत प्रतिबद्ध वोटबैंक है, किंतु इस वोटबैंक की अदला-बदली भी प्रत्याशी के चेहरे को देखकर ही होगी। ऐसे में इन दोनों दलों की सबसे बड़ी अग्नि परीक्षा प्रत्याशी चयन में होगी। जैसे कि सपा की सीट पर ऐसा प्रत्याशी हो जो सपा के साथ-साथ बसपा के जातिगत प्रतिबद्ध वोटबैंक को भी आकर्षित कर सके। यही स्थिति बसपा प्रत्याशी की भी होनी चाहिए। ये दोनों दल प्रत्याशी चयन में जब तक ऐसा समीकरण नहीं बैठा पाते, तब तक दोनों दलों के प्रतिबद्ध वोटबैंक की अदला-बदली संभव नहीं लगती। ऐसे में जिस सीट पर भी यह समीकरण गड़बड़ाएगा, उसका फायदा अन्य किसी दल के अच्छे प्रत्याशी को मिल जाएगा। देखा जाए तो राज्य स्तरीय चुनावों में स्थानीय मुद्दों पर जनता का फोकस होता है, जबकि लोकसभा के आम चुनाव में जनता पीएम के रूप में देश का भविष्य चुनती है। इस दृष्टि से वर्तमान परिदृश्य में भाजपा का पलड़ा ही भारी दिखाई दे रहा है।

pandeyvp1960@gmail.com

पेयजल की बढ़ती समस्या

जल हमारी मूलभूत आवश्यकताओं में से एक है। यदि किसी मनुष्य को कुछ सप्ताह तक भोजन ना मिले तो वह जीवित रह सकता है, परंतु यदि किसी मनुष्य को सिर्फ कुछ दिन जल ना मिले तो वह जीवित नहीं रह पाएगा। हमारे पास भविष्य के लिए तो पेयजल बहुत ही कम बचा हुआ है। बहुत से ऐसे क्षेत्र हैं जहां पेयजल की समस्या है, इसलिए वहां के निवासियों को मजबूरन अशुद्ध जल पीना पड़ रहा है। केंद्र सरकार द्वारा चलाए गए स्वच्छ भारत मिशन के अंतर्गत भी पेयजल पर कोई खास ध्यान नहीं दिया गया है। इसके लिए सरकार को कोई ठोस कदम उठाना चाहिए।

निखिल कुमार झा, दिल्ली विवि

पेड़ों की रक्षा भी करें

पेड़ों की घटती संख्या और बढ़ते प्रदूषण से स्वस्थ जीवन की उम्मीद करना मुश्किल हो गया है, क्योंकि आज मनुष्य भौतिकवादी जीवन और आधुनिक विकास के चंगुल में कुछ इस तरह फंसा हुआ है कि वह पर्यावरण के प्रति अपने दायित्व को भुला चुका है। जिस प्रकार पर्यावरण का दोहन हो रहा है उससे लगता है कि आने वाले समय में दूषित पर्यावरण बड़ी समस्या बनने वाला है। केवल नए पेड़ लगाना ही काफी नहीं है, उनका पूरी तरह से ध्यान रखना भी उतना ही आवश्यक है। नए पेड़ तो लगाए जाते हैं, किंतु उनका पूरी तरह से ध्यान नहीं रखा जाता है। यही कारण है कि तमाम प्रयास के बाद भी देश में पर्याप्त हरियाली नहीं आ पा रही है।

संध्या, दिल्ली विवि

अमीर-गरीब की खाई

भारत एक ऐसा देश है जहां बहुत असमानताएं हैं। पिछले दो दशकों में अर्थव्यवस्था में प्रगति के कुछ लक्षण दिखाई दिए हैं। यह प्रगति विभिन्न भागों में असमान है। गरीबी किसी भी राष्ट्र के विकास में बाधक है। अभी तक कोई भी सरकार गरीबी को घटाने के संदर्भ में कोई भी संतोषजनक परिणाम नहीं दे सकी है। इसका कारण यह भी है कि सरकारें गरीबी हटाने के लिए मन से कार्य नहीं करती हैं। वे गरीबों के हक की जितनी भी बातें करती हैं, उसके पीछे केवल वोट लेने का मकसद होता है।

ashmitayada1388@gmail.com

शिक्षा का व्यावसायीकरण

देश में शिक्षा और अस्पतालों का तेजी से व्यावसायीकरण होता जा रहा है। प्राइवेट स्कूल-कॉलेज में पढ़ाना और अस्पतालों में इलाज कराना आम लोगों के वश में नहीं रह गया है। कॉलेज तो कॉलेज स्कूली शिक्षा भी इतनी महंगी हो गई है कि नौकरी पेशा आदमी की आमदनी का अधिकांश हिस्सा बच्चों की पढ़ाई में ही चला जाता है। कोई बीमार हो जाए तो मुश्किल में जान आ जाती है। अगर सरकारी स्कूल-कॉलेज और अस्पतालों में बेहतर सुविधाएं मिलें तो कोई निजी संस्थानों में लुटने क्यों जाएगा। सरकार को इस दिशा में काम करने की जरूरत है।

mahesh_nenava@yahoo.com

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा
दैनिक
करन
भेजन

mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 23359961-62, नोएडा कार्यालय : 0120-3915800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय